भूमिका:-

महाराष्ट्र में रंगमंच की समृद्ध परम्परा दिखाई देती है। यहाँ पर प्राचीन काल से ही अभिजात्य और लोकरंगमंच दोनों विद्यमान हैं। इसकी ऐतिहासिक और लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है की संस्कृत के महान नाटककार ‘शूद्रक’ ने ‘मृच्छकटिकम’ की रचना विदर्भ प्रदेश में ही की थी। आधुनिक काल में भी महाराष्ट्र के नाटक भारत के प्रतिनिधि नाटकों में स्थान प्राप्त कर रहे हैं। विदर्भ की ऐसी एक प्रचलित रंगपरम्परा महत्त्वपूर्ण कड़ी है, झाड़ीपट्टी का रंगमंच।

महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के पूर्व में चंद्रपुर, गोंदिया, भंडारा, गडचिरोली यह चार जिले बसे हुए हैं जो की झाड़ीपट्टी क्षेत्र में आते हैं। पहले इन जिले को ‘डकझाड़ीमंडल’ के नाम से जाना जाता था। इस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा ‘डकझाड़ीमंडल’ के नाम से प्रचलित है। मूलत: यह प्रदेश आदिवासी लोगो का है। ओद्योगिक विकास के दृष्टि से यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ है। लेकिन यहाँ के रंगकर्मियों एवं दर्शकों ने ‘झाड़ीपट्टी’ नामक रंगमंच का विकास तथा संवर्धन किया है। जो विदर्भ के उपरोक्त क्षेत्र में सशक्त मनोरंजन का साधन बना है। खेती और जंगल में मेहनत करने वाले लोग जब थककर शाम को घर वापस आते हैं अपने मनोरंजन के लिए अपने ही कला-गुणों का प्रदर्शन करते हैं। जिससे दिन भर की थकान दूर हो जाती है इसी से यहाँ का रंगमंच विकसित हुआ है ऐसा माना जाता है।

विदर्भ के वैनगंगा नदी के किनारे रहने वाले लोगों द्वारा विकसित रंगमंच को लगभग 150 वर्षों से लोक कलाकार ‘मनाटकड़क’ कला प्रकार प्रस्तुत करते आए है। इस से पूर्वकथा, लोकगीत, दशावतार, खड़ीगंमत, दंडीगान, गोंधळ, कलसुत्री आदि लोककलाओं के माध्यम से लोकरंजन कार्य होता आ रहा है और इसी से झाड़ीपट्टी रंगमंच की शुरुवात हुई है। विभिन्न मंडलियाँ झाड़ीपट्टी में दीवाली पर्व से लेकर होली तक मनोरंजन और समाज प्रबोधन पर आधारित नाटक किया करतीं थीं

जो कि वर्त्तमान समय में व्यावसायिक रंगमंच में बदल गया है। इस रंगमंच में आर्थिक-सामाजिक कार्य को स्थापित किया है। इस बात को सिर्फ इसी से समझा जा सकता है की झाड़ीपट्टी के नाटकों के कारण चार महीने में वहां लगभग पच्चीस करोड़ का लेन-देन होता है। ऐसे रंगमंच का सूक्ष्मता से अध्ययन तथा विश्लेषण होना हमारी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बन जाता है। झाड़ीपट्टी क्षेत्र के रंगमंच का स्वरूप व्यापक है लेकिन हमारे शोध के दृष्टि से विषय को सीमांकित कर झाड़ीपट्टी रंगमंच पर मंचित नाटकों में संगीत के बदलते स्वरूप पर हमारा ध्यान केन्द्रित रहेगा।

झाड़ीपट्टी रंगमंच में नाटकों के मंचन की शैली में समय के साथ लोगो की अभिरुचि के अनुसार बदलाव होते हुए दिखाई देता है यही बदलाव यहाँ के नाट्य संगीत में भी प्रमुखता से देखने को मिलता है। मूलत: पारसी रंगमच से प्रभावित यहाँ के नाटकों का संगीत समय के साथ बदल रहा है न की संगीत, साथ में ही वाद्ययंत्रों के उपयोग में भी प्रयोग किया जा रहा है। इस परिवर्तन को दर्शक स्वीकार रहे हैं। इसीलिए इस रंगमंच के नाटकों के संगीत पक्ष का गंभीर अध्ययन अपेक्षित है। इसीलिए यह विषय शोध के लिए चुना है।

प्रस्तुत शोध के माध्यम से एक ओर जहाँ झाड़ीपट्टी के एतिहासिक परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया गया है वहीँ दूसरी ओर झाड़ीपट्टी के प्रस्तुति के विभिन्न चरणों का उल्लेख करते हुए झाड़ीपट्टी नाटक के वर्त्तमान स्वरुप को विश्लेषित किया गया है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से प्रयास किया गया है कि लोक-कलाओं पर शोध की संभावनाओं को भी जीवंत रखा जाए इसी कड़ी में यह शोध विदर्भ क्षेत्र के लोक-कलाओं हेतु आंशिक योगदान है एवं विदर्भ क्षेत्र की लोककलाओं पर शोध सामग्री की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोध को तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है-

प्रथम अध्याय “झाड़ीपट्टी रंगमंच का स्वरूप” में विदर्भ की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि के बारे में बताते हुए यहाँ की लोकनाट्य का संक्षिप्त परिचय दिया है। इसी के साथ विदर्भ के झाड़ीपट्टी नाटक के बारे में संक्षिप्त में बताया गया है।

दूसरे अध्याय “झाड़ीपट्टी रंगमंच के संगीत की परम्परा” में झाड़ीपट्टी नाट्यसंगीत की परम्परा के शुरूआत के बारे में बताया है तथा झाड़ीपट्टी के नाट्यसंगीत के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से बताया है।

तीसरे अध्याय “झाड़ीपट्टी संगीत का बदलता स्वरूप” में झाड़ीपट्टी संगीत का बदलता स्वरूप किस तरह का है यह बताया गया है। इसमें उप-अध्याय के माध्यम से नाट्य संगीत के बदलते स्वरूप को बताया गया है।

उपसंहार के अंतर्गत मैंने झाड़ीपट्टी नाट्यसंगीत लेते हुए वर्त्तमान समय में इस रंगमंच में क्या बदलाव हुए हैं तथा इस बदलाव का पक्ष-विपक्ष को भी प्रस्तुत किया गया है।

अंत में परिशिष्ट के अंतर्गत झाड़ीपट्टी के कलाकारों का साक्षात्कार एवं झाड़ीपट्टी के प्रस्तुति के चित्रों को रखा गया है।

सामाजिक शोध में तीस वर्षों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों को देखा जा सकता है कि किस तरह से विभिन्न कलाओं को भी सामूहिक विश्लेषणात्मकता के आधार पर विभिन्न शोध आंकड़ों के माध्यम से देखना प्रारम्भ किया है। नाट्यकला के शोध में हमें न केवल नाट्य-अनुभवों बल्कि उनकी प्रस्तुतियों और अर्थ प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करना होता है। नाटक का अध्ययन गुणात्मक शोध के अंतर्गत आता है। जिसमें नाटकों का मानवशास्त्रीय अध्ययन भी संभव है।

प्रस्तुत शोध “**विदर्भ क्षेत्र में झाड़ीपट्टी रंगमंच के नाट्य संगीत का बदलता स्वरूप**” विदर्भ के समाज एवं संस्कृति को प्रस्तुत करता है। इस शोध में गुणात्मक शोध प्रविधि के अंतर्गत तुलनात्मक, विशेषणात्मक, विवरणात्मक पद्धतियों का उपयोग किया गया है। इस शोध में झाड़ीपट्टी के कलाकारों का साक्षात्कार किया गया है तथा प्रस्तुति प्रक्रिया को समझने के लिए उनके बीच रहकर अवलोकात्मक पद्धति का भी प्रयोग किया है। जिसके आधार पर झाड़ीपट्टी के तकनीकी तथा विभिन्न पहालुओं का बारीकी से विश्लेषण किया गया है।

इस शोध को पूरा करने में मेरे शोध निर्देशक डॉ. सतीश पावड़े जी का अहम योगदान है, जिनके मार्गदर्शन में शोध साकार हो सका। साथ ही प्रदर्शनकारी कला (फिल्म एवं नाटक) विभाग के अध्यक्ष प्रो. सुरेश शर्मा जी का भी सहयोग रहा।

हमारे विभाग के सहायक प्राध्यापक डॉ. सुरभि विप्लव, डॉ. अश्विनी सिंह, सहायक प्रा. अभिषेक कुमार जी का भी आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रस्तुत शोध को सही अर्थों में साकार रूप देने में दंडार एवं झाड़ीपट्टी के शोध अध्येता डॉ. हरिशचन्द्र बोरकर जी की प्रमुख भूमिका रही। साथ ही झाड़ीपट्टी के कलाकार विशाल तराल, डॉ. चेतन राने, युवराज प्रधान, प्रल्हाद मेश्राम, नारायण देशमुख, डॉ. मोहरकर, पीताम्बर, जनार्धन लाडसे, सदानंद बोरकर, हिरामनजी लांजे, इन्होंने विशेष सहयोग किया।

मैं सुशिल ससाने, कृष्णमोहन, ज्योति सिंह, मनीष कुमार, ओम, सौरभ गुप्ता, रोहित कुमार, कविता सिंह चौहान, गौरव मिश्रा, चैतन्य आठले, रविन्द्र मुंढे, मुकेश कुमार, सुहास नगराले, प्रेम कुमार, राजदीप तथा अन्य सभी मित्रों का आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने शोध को पूर्ण करने में मेरी सहायता की।

अंत में मैं अपने माता-पिता जो मेरे गुरु भी हैं उनका आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने हर समय मुझे प्रोत्साहित किया।

प्रथम अध्याय- झाड़ीपट्टी रंगमंच का स्वरूप

विदर्भ प्रांत लोकाकलाओं से संपन्न ऐसा प्रदेश रहा है। विदर्भ में कृषिप्रधान संस्कृति रही है। और देखा जाता है की जहां जहाँ कृषि प्रधान संस्कृति रही है वहां लोककला की परम्परा जुड़ी रही है। विदर्भ प्रदेश को तीन भागो में बांटा गया है। चावल की खेती करने वाला प्रदेश भंडारा, गडचिरोली, गोंदिया इसे हम झाड़ी के नाम से जानते हैं। वर्धा, नागपुर, यवतमाल इसे हम कपास का प्रदेश के नाम से जानते हैं, कपास को सफ़ेद सोना भी कहा जाता है। अमरावती, अकोला, वाशिम, बुलढाना इस प्रदेश को वर्हाड के नाम से जाना जाता है। इन प्रदेशों में अनेक लोकनाट्य आज भी किये जाते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:-

विदर्भ को प्राचीन काल से ही महत्त्वपूर्ण वैभव प्राप्त हुआ है। वैदिक काल से लेकर तो आज तक अनेक प्रकार से विदर्भ के संदर्भ वाड़:मय और लोककथाओं में मिलाता है। भगवान बुद्ध के समय में भी संघमित्रा जब श्रीलंका जा रही थी तब वह विदर्भ से होकर गयी थी ऐसा उल्लेख मिलता है। मौर्य काल में और बाद में हर्षवर्धन के काल तक विदर्भ के संस्कृति के अवशेष थे जिनके बारे में हमें शिलालेख के माध्यम से पता चलता है। इ. स.1152 से 1526 इस कालखंड में उत्तर की तरफ सुल्त्तानों को राज्य था। तब उसका असर विदर्भ में इतना दिखाई नहीं देता। पर 1526 से 1707 मुगल साम्राज्य का काल है ।[1] इस काल में दक्षिण के निजामाशाही का भी प्रभाव दिखाई देता है ।[2] अठारह, उन्नीस, बीस के दशक में अंग्रेजों के काल में भी निजामशाही का विदर्भ पर प्रभाव दिखाई देता है।

---

[1] लोकशाही वार्ता

[2] वही

प्राचीन काल में गृत्समद नाम ऋषि थे। उन्होंने सर्वप्रथम कपास की खोज की। कपास के फल से तंतु निकालकर उससे धागा बनता है ये उनके समझ में आया था। शुरुआत में इन धागों का उपयोग बाती (दिये की) बनाने के लिए किया जाता था। इस धागे की मांग ज्यादा हो इसलिए इस ऋषि ने धागे के बना जनेऊ गले में बांधने को कहा। जिसके कारण कपास तथा कपास के बने वस्तु को बेंच सके। तब से चली आ रही जनेऊ की प्रथा आज भी ब्राह्मण वर्ग में शुरू है। इस तरह गृत्समद ऋषि का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि:-

गोंड राज्य के काल में संस्कृत काव्य नाटक तथा चित्रकला को अधिक प्रसिद्धि मिली। कालिदास ने मेघदूत काव्य रामटेक में लिखा गया होगा ऐसा कहा जाता है। 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' जब कुछ साहित्यिक और कवि एकत्रित होते हैं, तब उनको ऐसे ही मेघमंडल रामटेक के इर्द-गिर्द दिखते हैं। इसलिए महाराष्ट्र सरकार ने कालिदास स्मारक रामटेक में बनवाया है। रामायण, महाभारत आदि पुराणों में विदर्भ का उल्लेख हमें दिखाई देता है। विदर्भ के बारे में समाज की सारी लक्षण प्रतिबिंबित हुई दिखाई देती है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस चार पुरुषार्थ का परामर्श पुराणों में मिलता है। वैदर्भीय जीवन के यह सारे अंग मार्कडेयपुराण, पद्मपुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण, अग्निपुराण आदि पुराणों में मिलाता है। उसके आलावा सौ से ऊपर उपपुराण हैं जिनमें से कई उपलब्ध नहीं है। सिर्फ 15 पुराण मिलते हैं। उसमें से सनतकुमार, नारसिंह, दुर्वाषा, नारदीय, वामन, कपिल, महेश्वर आदि पुराणों में विदर्भ प्रांत का उल्लेख मिलता है। वायु, ब्रम्हा, मत्स्य में विदर्भ प्रांत का उल्लेख मिलता है। विदर्भ में के तीर्थ और व्रत में मोटा-मोटी उल्लेख पद्म, स्कंध और भविष्य पुराण में मिलता है। मार्कण्डेय ऋषि तो विदर्भ के ही थे।

राजनैतिक पृष्ठभूमि:-

विदर्भ में एकसमय में गोंड राजा का साम्राज्य था। 1578 से 1691 इस काल में ऐतिहासिक घटना ध्यान में रखते हुए बख्तबुलंद शाह ने नागपुर शहर की निर्मिति की है।[3] उत्तर और पूर्व के तरफ से उन्होंने अपना साम्राज्य बढ़ाया है। बख्तबुलंद शहा के बाद मराठों के इतिहास में नागपुर का नाम अजरामर करने का काम इतिहासपुरुष रघुजी भोसले के प्रमाण मिलते हैं। भोसले ने अपना राज्य पूर्व से सीधे बंगाल तक बढ़ाया था। नागपुर क्षेत्र में गोंड राजा का राज्य लगभग 100 से 125 साल तक चला। उनके कारण अनेक ऐतिहासिक काम इसी काल में हुई। उसमें राजवाड़े, किल्ले, स्मारक, समाधी, पुल, मंदिरे, वाडे, बागाबगिचे, भिन्न-भिन्न बाजारपेठ इनका समावेश होता है। भोसले खुद को सिसोदिया राजपूत समझते थे। भोसले काल में मराठे, ब्राम्हण, प्रभु को छोड़कर उर्वरित समाज 114 जातियों में विभाजित था। उसमें 62 प्रकार के व्यवसाय करने वाले लोग थे।

इसकी सांस्कृतिक विरासत के साक्ष्य प्राचीन काल से मिलते हैं। इस अध्याय में हम विदर्भ की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करने वाली ऐसी ही कुछ वैदर्भीय लोककलाएं देखने को मिलती हैं। विदर्भ प्रांत में हमें अनेक लोककलाएँ देखने को मिलती हैं- गंगासागर, नागबरी, मरिमाय, महादेव के गाने (शंकर पार्वती के) फुगडी, लप्पक, डफगान, राधा, भिगिसोंग, खड़ीगंमत, दंडार जैसे कई कलाएं सम्मलित हैं।

विदर्भ के लोकनाट्य:-

विदर्भ में पुरातन काल से नृत्य नाट्य की परम्परा दिखने को मिलती हैं। विदर्भ क्षेत्र में विभिन्न तरह के लोकनाट्य एवं लोकगीत प्रचलित है इन सभी लोकनाट्य एवं लोकगीत को हम संक्षिप्त में जानते हैं।

---

[3] लोकशाही वार्ता

गंगासागर:-

विदर्भांचल के वर्धा जिले में लोकनाट्य गंगासागर खेला जाता है। चंद्रपुर जिले में खेला जाने वाला रामायण और गंगासागर मिलता जुलता कलाप्रकार था। किन्तु कथानक में भिन्नता पायी जाती है। गंगासागर का प्रमुख सूत्रधार 'गंगासा पात्र'होता है। गंगासागर का कोई लिखित आलेख नहीं प्राप्त होता है। सभी लोकनाट्यों की तरह यह भी मौखिक परंपरा का निर्वहन करते हुए लौकिक और अलौकिक जीवन दर्शन को मंचपर प्रस्तुती के माध्यम से दर्शकों तक पहुंचाते हैं। इसी प्रकार चन्द्रावती, निलावारी, जाईरानी इन वैदर्भीय लोककथाओं का प्रचलन भी इस विदर्भ क्षेत्र में दिखाई देता है।

पूर्वरंग में पूजा, विधि, नमन, गण, आरती या स्थानिक देवता की स्तुति की जाती है और उत्तरंग में मुख्य कथा को प्रस्तुति के द्वारा दर्शकों तक पहुँचाया जाता है। लेकिन अब यह लोकनाट्य लुप्त होने के कगार पर है।

नागबरी:-

नागबरी यह कलाप्रकार 'नाग पूजा' से सम्बंधित है जिसका प्रचलन नागपंचमी के समय विशेष रूप से विदर्भ क्षेत्र था जिसे आज भी कहीं-कहीं है। नागसंस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला यह कलाप्रकार आजकल लुप्त होता हुआ नजर आ रहा है। इसका प्राचीन काल में बहुत महत्त्व था। नागपूजन के समय जो गाने गाये जाते थे उन्हें नागबरी कहा जाता था। नाग देवता के उपासक समूह में ये गीत गाते हुए अपने क्षेत्र के सभी नाग मंदिरों में जाते हैं और नाग की पूजा करते हैं। नागद्वार की यात्रा से वापस घर लौटे यात्रियों द्वारा की जाने वाली पूजा में नागबरी गायी जाती है। इन गीतों को नागदेवता के प्रकोप से बचने के लिए गाया जाता है। नाग यह प्रतीक शंकर भगवान की कथाओं में

देखा जा सकता है। शिव ये आदिम संस्कृति के उपास्य देवता हैं। इसीलिए वन्य एवं ग्रामीण जीवन के साथ संबंध बनाने वाली यह प्रथा है। नाग यह किसान का मित्र होने से भी उसकी पूजा की जाती है।

मरिमाय:-

मातृ पूजन यह भारतीय आदिम मातृसत्तात्मक कुटुंब पद्धति का प्रतीक है। आगे स्त्री को जो दुय्यम स्थान प्राप्त हुआ उसके चलते इस परम्परा ने कर्मकांड का रूप धारण कर लिया। मरिमाय ग्राम देवी को मातृसत्तात्मक संस्कृति के संदर्भ के रूप में देखा जा सकता है। विदर्भ के हर गाँव में एक मरिमाय या मातामाय देवियों का मंदिर होता है। पहले ज़माने में गाँव में आई किसी भी महामारी या विपदा को खत्म करने के लिए मरिमाय या मातामाय का पूजन किया जाता था। महाराष्ट्र में आज भी कई जगह मरिमाय के नाम से पालकी या रथ यात्रा की प्रथा भी देखने को मिलती है जिसेमें लोग बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं क्योंकि इस पालकी या रथ को हांथों से खींचने का रिवाज है। माता जब अपने भक्तों से रूठ जाती थी तो उसे प्रसन्न करने के लिए मरिमाय के गीत गाए जाते थे। इन गानों का आज कोई महत्त्व नहीं रहा क्योंकि आज कल यह बस हास-परिहास निर्मिती के लिए ही प्रयोग में लाये जाते हैं। यह प्रस्तुती करने वाला कलाकार मातामाय की वेशभूषा में रहता है। जिसमें वह बड़ा सा टीका अपने माथे पर लगाता है और नाचता है और उसके सहकारी उसका गाने में साथ देते हैं।

आली आली व् मातामाय .... माझी व मातामाय

आली आली व झाड़ीतुन .... नींबू फेकते गाडीतून

3] महादेव (शंकर) के गाने:-

महाशिवरात्री का उत्सव जैसे ही पास आता है तो विदर्भ के जनमानस में आनंद तथा उत्साह निर्माण होता है। यह वह समय होता है जब खेत लहलहाते हैं। किसानों को अपनी मेहनत से राहत

मिलती है और इसी समय शिवरात्री का पर्व भी आता है। सारे विदर्भ में मेले एवं यात्राओं की तैयारियां चलती है। मिठाईयों की खुशबू आती है, भांग का प्रसाद और संपूर्ण वातावरण भक्तिमय हो जाता है। डफ और बांसुरी से सारा आसमान गूंज उठता है। पीले रंग की थैली में खजूर, सुपारी, चावल, हल्दी, कुंकू जैसे पूजा का सामान इसे 'खार्या' कहा जाता है। यह शायद शैव पंथ की दीक्षांत विधि है।

महादेवा जातो गा .... सांभा रे माया ....

खांद्यावरी खार्य गा................ आगा घेतला काहुन

घेतला काहुन न घरचा वैताग पाहून

इसी के साथ और भी कई लोकगीत महादेव के प्रचलित हैं।

फुगडी:-

फु बाई फु .... फुगडी फु ....

दमलास काय माझ्या गोविंदा तू?..........

इस प्रकार के फुगडी गीत विदर्भ में प्रचलित हैं। फुगडी कलाप्रकार अति प्राचीन है। पौराणिक समय में कृष्ण भगवान की रामलीला में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। वैदर्भीय ग्रामीण या शहरी जीवन में आज भी फुगडी कलाप्रकर प्रचलित है। अश्विन महीने में ग्रामीण महिलाओं के जो अलग-अलग खेल आयोजित होते हैं उसमें फुगडी भी आती है। इसमें दो या तीन महिलाएं हाथों में हाथ लेकर गोल-गोल घूमती हैं और गाना गाती हैं। फुगडी खड़ी और बैठी ऐसी दो प्रकार की देखने को मिलती है।

डफगान:-

डफगान का अर्थ है डफ बजाकर गया हुआ आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक गीत। शाहिर अपनी रचनाओं को डफ बजाकर स्फूर्त गीत प्रस्तुत करता है। इन गीतों का कथानक मुख्यतः आध्यात्मिक होता है। डॉ. हरिश्चंद्र बोरकर ने अपनी किताब “विदर्भाचे लोक” लेने ‘खड़ी गंमत’ इस ग्रंथ में कहा है कि यह प्राचीन कलाप्रकार बारहवीं शताब्दी में अस्तित्व में था। सावला कुंभार शाहिर ने आध्यात्मिक विषयों पर डफगान प्रस्तुत किया था। सागगान की लावणी, कलगीतुरा आदि भेदक रचना प्रकारों में मूल डफगान आज भी देखा जाता है।

डफगाने

वंदुनी सद्गुरुच्या चरनी । गाइन ऐका डफगान ।।

गाणारा होतील हा सांगुन देई ।

आधी उजेड की अंधार ।।

आधी माया की ईश्वर ।।

आधी त्रिगुण की अंधकार घडला सांगा ।।

डफगान यह कलाप्रकार आज लुप्त हो गया है फिर भी डफ के माध्यम से रचना करने वाले शाहिर आज भी विविध लोकनाट्यों में देखने को मिलते हैं। खड़ीगंमत, पोवाडा, कलगी-तुर्रा, तमाशा और शाहिरी इन लोककलाओं में डफगान महत्त्वपूर्ण होता है।

राधा:-

विदर्भ के झाड़ीपट्टी के ग्रामीण प्रदेश में राधा ये लोककला दलित वर्ग ने अपने मनोरंजन के लिए निर्माण की है। राधा अन्य लोकनाट्य की तरह लुप्त होता जा रहा है। राधा में सुन्दर लड़का साड़ी पहनकर नृत्य करता है। जिसे नाचा संबोधित किया जाता है। नर्तन डफ हाथ में लेकर लोगों में उपस्थित दर्शकों में बिदाई (पैसा, अनाज) मांगता था। राधा नाच ऐसा शब्द प्रयोग कोंकण और महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में भी किया जाता है। शाहिर ढोलक, तुनतुना और ताल (मंजीरे) वादक व झिलकारी के साथ वह राधा कलाप्रकार प्रस्तुत किया जाता था। द्विअर्थी संवाद, कामुक हावभाव, विनोदात्मक संवाद बोलकर लोकरंजन किया जाता था। राधा में संहिता नहीं होती थी और न ही नियोजनबद्धता होती थी। चित्रकार और लोकासाहित्य के विद्वान धनंजय वाकोडकर जी ने राधा कलाप्रकार पर गंभीरता से चिंतन किया है।

भींगीसोंग:-

विविध वेशभूषा लेकर गाँव में घूमकर इन रूपों के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करना और बदले में कुछ पैसे या अनाज लेकर जीवन चलाने वाली इस कला को 'भींगी सोंग' कहते हैं। महाराष्ट्र में यह बहुरूपिए के नाम से भी जाना जाता है। मराठी में आईने को 'भिंग' कहा जाता है। 'भिंग लावने' यानि नटना। यह बहुरूपी रोज अलग-अलग रूप लेकर आते हैं। जोगी तंटया, भिल्ल यह रूप विदर्भ में भी आज भी प्रसिध्द है। हनुमान, पुलिस, कृष्ण भगवान, राम जैसे रूप लिए जाते हैं। बहुरूपीयों का रंगमंच यह नुक्कड़ नाटकों की तरह है। एक ही दिन में यह बहुरूपिए अलग-अलग जगह पर घरों में दुकानों में गाँव के चौराहे पर, रास्ते पर सोंग (रूप) दिखाकर रसिकों का मनोरंजन करते घूमते रहते हैं।

खड़ीगंमत:-

खड़ी गंमत का अर्थ है दर्शकों का खड़ा रहकर मनोरंजन करना। खड़ी शब्द का शाब्दिक अर्थ है खड़ा होकर और गमंत अर्थात मौज, मस्ती, मजाक और आनंद है। इस प्रकार रात भर मंच पर खड़ा होकर दूसरों को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से आनंद देनेवाली लोककला ही खड़ी गंमत कहलाती है। “खड़ी गंमत प्रस्तुत करते समय मुख्य नर्तक याने नाचा, सूरते, वादक आदि कलावंत होते हैं। संस्कृत नाटक के सामान ही सूत्रधार प्रस्तुती में सहभागी होते हैं।”[4] वह डफ बजाकर गीत गाते हैं और समय-समय पर विभिन्न भूमिकाओं का अभिनय भी करता है। विदर्भ के गाँव-गाँव में खड़ी गमंत का मंचन शुरू ही रहता है। खड़ी गंमत में गायन-वादन पर ज्यादा जोर होता है। गद्य संवाद से ज्यादा पद्य गीतों के माध्यम से प्रसंग (कथानक) पर भाष्य (वर्णन) करने में खड़ी गंमत धन्य मानती है।

दंडार:-

दंडार विदर्भ का प्राचीन लोकनाट्य है। यह एक प्राचीन कृषि नृत्य है। दंड अर्थात खेत और डार याने टहनी। खेत में पकी फसल की तरफ देखकर जब किसान खुश होता था तो वह एक हाथ में आम की टहनी लेकर अपने दोस्तों के साथ नाचने लगता था। इसी नाच का रूपांतरण आगे चलकर दंड नृत्य में हुआ। ये लोकनाट्य मुख्यत: नृत्य कला होकर भी झाड़ीपट्टी यानि चंद्रपुर से लेकर गडचिरोली, गोंदिया जिलों को मिलाकर जो एक बड़ा अंचल है जिसे झाड़ीपट्टी कहा जाता है, में प्रचलित है। इस लोकनाट्य के प्रारंभ में नमस्कार, गण, विदूषक, सदारंगलाल और सदगुलजार यह दो पात्र और साथ झड़ती (सोंग) जैसे क्रम से पूर्वरंग प्रस्तुत किया जाता है। इसमें पौराणिक कथाओं के साथ संत नामदेव, संत दामाजी, इन पर भी प्रवेश प्रस्तुत किये जाते है। 12वीं शताब्दी में निर्माण हुई यह कला झाड़ीपट्टी के कोहली समाज ने आज भी संरक्षित करके रखी है ऐसा दिखाई देता है।

---

[4] जागतिक रंगभूमि पूर्वरंग 1 पृष्ठ क्र.112

झाड़ीपट्टी रंगमंच का स्वरूप:-

विदर्भ के वैनगंगा नदी के तट पर बसी हुई समृद्ध नाटक परम्परा मतलब झाड़ीपट्टी रंगमंच। स्थानीय बोली, स्थानीय कलाकार को लेकर स्थानीय दर्शकों के मन में बसी हुई इस रंगमंच को बहुत लोकप्रियता मिली है। झाड़ीपट्टी रंगमंच की परम्परा ढेड़ सौ साल पुरानी है।

दीपावली से लेकर होली तक झाड़ीपट्टी क्षेत्र में ऐसा ही माहोल देखने को मिलता है। इस क्षेत्र की जीवनदायनी कही जाने वाली वैनगंगा नदी के दोनों तट पर झाड़ीपट्टी क्षेत्र स्थित है। इस क्षेत्र में नवरगांव, पवनी, आरमोरी, वडसा, लाखंदुर, रेंगेपार और नागभीड़ गाँव आते हैं। इन सभी गाँव में झाड़ीपट्टी रंगमंच कई सालों से चलता आ रहा है।

गाँव के बाहर खेतों में जगह साफ़ की जाती है और बड़ा चौकोनी आकर का खड्डा तयार किया जाता है। इसी खड्डे की मिटटी का प्रयोग करके ऊँचा मंच तैयार किया जाता है। सामने वाले खड्डे में प्रेक्षकों को बैठने के लिए कुर्सी की व्यवस्था की जाती है। और खड्डे के दोनों बाजु में गद्दे, सतरंजी, कम्बल आदि की व्यवस्था कर प्रेक्षकों के लिए बैठने की काफी अच्छी व्यवस्था की जाती है। मंडप में बैठने वाले सभी दर्शकों को रंगमंच पर होने वाली हलचल दिखाई दे ऐसी व्यवस्था की जाती है। रंगमंच के सामने ध्वनी संयोजक, ताल वादक और केसियो वादक इनके लिए जगह बनाई जाती है। नाटक भावनात्मक होता है। विनोदी कलाकारों के काव्यगनिक हलचल या हावभाव के अनुसार कैसियो वादक ढंग-ढंग तरह का पार्श्व संगीत देता है।

एक समय में इसी परिसर में गोंध, भिगिसोंग, खड़ीगंमत, दंडार आदि लोककला यहाँ के लोगों के लिए मनोरंजन का प्रमुख साधन था। और उसी द्वारा नृत्य-संगीत से सजी हुई पौराणिक, ऐतिहासिक कथासार प्रस्तुत किये जाते थे। इन्ही लोक कलाप्रकारों का अनुकरण करते हुए आगे

झाड़ीपट्टी नाटक का जन्म हुआ। इसीलिए शुरू-शुरू में नाटकों की कथा पौराणिक और ऐतिहासिक हुआ करती थी।

झाड़ीपट्टी नाटक में संगीत को नाटक का प्राण समझा जाता है। धीरे-धीरे नाटक में लावणी का समावेश हुआ और लावणी प्रधान नाटक शुरू हुए। एक नाटक में 15-20 लावणी का समावेश होता था। कालानुसार इन नाटकों का चलन बदल गया। आज ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक के बदले सामाजिक और कौटुमबिक नाटकों की मांग बढ़ गयी परन्तु आज भी यहाँ के किसी भी नाटक में संगीत को अहम माना जाता है। इस नाटक में दो अंकों के बिच गीतों के अलावा आज कल रिकार्डेड नृत्य को महत्व दिया जाता है, इतना ही नहीं जब इन नाटकों का विज्ञापन होता है तब इस तरह के नृत्य का विशेष रूप से उलेख्य किया जाता है। नाटक के विज्ञापन में नाटक के नाम से पहले ही संगीत शब्द का उपयोग किया जाता है उदाहरण के लिए “संगीत माझी सवंत” इस तरह नाटक का नाम लिखते हैं और उसका विज्ञापन करते हैं। इसी तरह तीन अंकों का नाटक भी यहाँ दर्शक देखते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं।

झाड़ीपट्टी रंगमंच का इतिहास:-

झाड़ीपट्टी रंगमंच का इतिहास डेढ़ सौ साल पुराना माना जाता है। यह प्राचीन समय में आदिवासियों के मनोरंजन का साधन था। ब्रिटिशों ने ठंड और जंगल के कारण इस क्षेत्र को अधिक प्राधान्य दिया था इस क्षेत्र में कई ईमारत, विश्रामगृह, ब्रिज आदि ब्रिटिश कालीन हैं, इसी काल में गाँव के स्तर पर मनोरंजन के लिए नाटकों का प्रयोग शुरू होने लगा और तब से झाड़ीपट्टी रंगमंच एवं नाटकों के प्रचलन की नींव रखी गयी। आज के समय में रंगमंच मनोरंजन के साथ-साथ समाज प्रबोधन का भी काम नाटकों के माध्यम से कर रहा है।

डरामा: नया लोकनाट्य:-

अंग्रेजी का ड्रामा शब्द झाड़ीपट्टी के बोली भाषा में डरामा हो जाता है इस में नाटक की तरह मंच तैयार किया जाता है। पांच-छह पर्दे लगे होते हैं। झाड़ीपट्टी नाटक की तरह झगमगीत दर्शनी पड़ता होता है जिस तरह झाड़ीपट्टी नाटक में सामने वादक बैठते हैं वैसे ही डरामा में भी संगीत मंडली रंगमंच के सामने अपनी व्यवस्था करते हैं। नाटक की तरह हारमोनियम, तबला, व्हायोलिन एवं टाळ बजाने वाले झिलकरी (ढोलक बजने वाला ढोलक्या, चोनाका बजानेवाला चोनाक्या, टाल बजानेवाला टालकरी और छड़ी बजने वाला छडीदार ये चार साथीदार होते हैं, जिन्हें ‘झिलकरी’ संज्ञा दी जाती है।) बैठते हैं। इसमें भी पात्र परिचय होता है परदा खोलने से पहले नांदी शुरू होती है उसके बाद कर्कश आवाज के साथ दर्शनी परदा उठता है और पात्रों का प्रवेश होता है और प्रेक्षक शांत हो जाते हैं।

सभी कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी वह काल्पनिक होते हैं। सभी कलाकरों की वेशभूषा तड़क-भड़क वाली होती है। संवाद पूर्ण होने के बाद उसी संवाद के अर्थपूर्ण गीत गाया जाता है। अभिनय में अतिरंजकता होती है और सामने बैठे दर्शक इसे दाद देते हैं। ‘हरिश्चन्द्र बोरकर’ जी के अनुसार इस पूरी प्रक्रिया को देखते हुए दंडार लोकनाट्य की याद आती है। परसंगी दंडार इसी प्रकार से प्रस्तुत की जाती थी। बोरकर जी के अनुसार विष्णु भावे जी का सीता स्वयंवर इस नाटक में भी यही प्रकार दिखाई देता है।

मध्यप्रदेश में डरामा हिंदी में प्रस्तुत किया जाता है। रामायण और महाभारत लोकनाट्य के आधारग्रंथ हैं। डरामा इस लोकनाट्य में रामायण, महाभारत के कथानक का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार डरामा लोकनाट्य झाड़ीपट्टी में महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

यादगार नाट्यप्रयोग:-

झाड़ीपट्टी में ‘मरिमायचा भूत्या’ नाटक का प्रयोग यादगार रहा है। इस नाटक की विशेषता यह थी की, आदिवासीयों पर अंधश्रद्धा, रुढी, परम्परा का परदा था इसके विरोध में यह नाटक किया गया था। इस नाटक के विरोध में लोगो ने आंदोलन भी किये थे, इसके कारण सरकार ने इस नाटक पर बंदी लाई थी। पर नक्सलवादियों ने यह कह कर की ये मामला आदिवासियों का है सरकार को धमकियाँ दी और इस नाटक के प्रयोग शुरू किये गए पर सरकार ने इस नाटक पर सेंसंर की तरफ से बंदी लगायी। यह प्रकरण कोर्ट तक चला गया और काफी आगे बढ़ गया बाद में इस नाटक में कुछ भी आक्षेप जैसा नहीं है यह सिद्ध होने के बाद नाटक फिर शुरु किया गया। उसके बाद इस नाटक के प्रयोग पांच सौ से अधिक झाड़ीपट्टी क्षेत्र में हुए। झाड़ीपट्टी नाटक की कथा भींगीसोंग, दंडार, राधा, दंडीगान, खड़ीगंमत, कथासार, गोंधळ, बैठकी पोवाडे लोकनाट्य से झाड़ीपट्टी नाटकों की उत्क्रांति हुए हैं।

झाड़ीपट्टी रंगमंच में होने वाले नाटकों में अलग-अलग विषय देखने को मिलते हैं जैसे अंधश्रद्धा, जातिवाद, लोकसंख्या, भ्रष्टचार, खेती, शिक्षण,आदि। भरतमुनि के अनुसार नाटक सभी रसों की उत्पति करता है। इसलिए नाटक मनोरंजन के माध्यम से समाजप्रबोधन का कार्य करता है। 1886 में नागपुर में सांगली से नाटक कंपनी नाटक की प्रस्तुति देने आये थी, पुणा मुंबई से जो भी नाटक आते थे वहाँ नाटक देखने झाड़ीपट्टी के कलाकार जाते थे। वहां के नाटकों में दंडार के कलाकारों को कुछ अलग महसूस हुआ इसीलिए इन्होने नाटक के बारे में जानकारी लेना शुरू किया। और दंडार का रूपांतरण नाटक में किया और दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया।

ऐसा कहा जाता है, झाड़ीपट्टी नाटक में कोहली समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कोहली समाज जमीनदारी और मालगुजारी करता था। इन लोगों को दंडार और नाटक देखने का बहुत शौक